स्वराज दर्शन

सुनील सहस्रबुद्धे

चर्चा के लिए प्रथम प्रारूप

जुलाई 2019

विद्या आश्रम

सारनाथ, वाराणसी

स्वराज दर्शन

- **सुनील सहस्रबुद्धे**
विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी
vidyaashram@gmail.com
vidyaashram.org
lokavidyajanandolan.blogspot.in
darshanakhadablog.wordpress.com

इस वर्ष के स्वराज महोत्सव के उद्घाटन सत्र में बोलने के लिए स्वराज विद्यापीठ ने हमें बुलाया इसके लिए हम उनके आभारी हैं. प्रो. बनवारीलाल शर्मा के द्वारा स्वराज की ओर बढ़ने के लिए बनाये गए **आज़ादी बचाओ आन्दोलन** से हम शुरू से परिचित हैं. स्व. प्रो. शर्मा को हम प्रणाम करते हैं. चूँकि यह चर्चा इलाहाबाद में हो रही है, इलाहाबाद की एक और विभूति का ज़िक्र हम करना चाहेंगे. ये हैं स्व. रामभूषण मेहरोत्रा, जो अंत में इलाहबाद उच्च न्यायालय में न्यायाधीश हुए. समाजवादी विचारों से प्रेरित मेहरोत्रा जी से मेरा परिचय तब हुआ जब वे इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकील थे. तब से लेकर उच्चतम न्यायालय तक उन्होंने मेरा कानपुर आई.आई.टी. के दर्शन विभाग में हिंदी में पीएच. डी. थीसिस लिखने के अधिकार के लिए संघर्ष किया. फीस लेना तो दूर, सारे खर्चे वे ही उठाते थे, खाना भी वे ही मुझे खिलाते थे. इलाहाबाद की धरती पर दिया जा रहा यह व्याख्यान हम आदरणीय स्व. रामभूषण जी को समर्पित करते हैं.

इस प्रस्तुति में हमने ज्ञान की दुनिया, लोकविद्या का विस्तार, स्वदेशी दर्शन परम्परा और 21 वीं सदी के जनआंदोलनों का सन्दर्भ लेते हुए स्वराज दर्शन के बारे में सोचने का प्रयास किया है.

स्वराज विद्यापीठ ने इस वर्ष के स्वराज महोत्सव में 'संवेदना' को केंद्र में रखने का तय किया है. उन्होंने कहा है कि **'स्वराज के केंद्र में "संवेदना" है'**. हम इस बात से सहमत हैं. यह भी सच है कि मनुष्य को संवेदनहीन बनने की ओर ढकेलने का काम बड़ी पूँजी के मालिक और बाज़ार पर कब्ज़ा जमाये हुए औद्योगिक और व्यापारिक निगम (कारपोरशन) सतत करते रहते हैं. इसलिए स्वराज की ओर बढ़ने के रास्ते में ये निगम बड़ी बाधा हैं. आज़ादी बचाओ आन्दोलन का कारपोरेट की मुखालफ़त का काम स्वराज की ओर बढ़ने का रास्ता बनाने का सहयोगी काम है. लेकिन मनुष्य को संवेदनहीन बनाना यह कोई केवल ताकत और ज़बरदस्ती का काम नहीं है. इतना बड़ा और शैतानी काम तो तभी हो सकता है जब सार्वजनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित दर्शन, ज्ञान और समाज की व्यवस्थाएं तथा राजनीति सभी संवेदनहीन हों. यानि मनुष्य के सोचने और समझने के तरीके पर ही संवेदनहीन दबाव बने रहें. इतना ही नहीं तो उसके आपसी संबंध तथा जीविका कमाने के तौर-तरीके भी संवेदनहीनता के शिकार हो जायें. कहा यह जा रहा है कि मनुष्य को संवेदनहीन बनाना इतना बड़ा कुकृत्य है कि अर्थ, राजनीति और ज्ञान के क्षेत्र जब एक दूसरे के साथ तालमेल

में यह किया जाता हैं तभी यह हो पाता है. इसलिए स्वराज का रास्ता ढूंढने और बनाने का काम केवल कोई राजनैतिक या आर्थिक प्रकल्प नहीं है तथापि ज़रूरत इस बात की है कि दर्शन के स्तर पर समाज में एक बड़ा दखल हो जो समाज को उसके हर पहलू में झकझोर दे.

दर्शन की दो बातें

संवेदना को वापस मनुष्य में और समाज की व्यवस्थाओं के आधार में लाने के लिए एक नए दर्शन की ज़रूरत होगी. एक ऐसे दर्शन की ज़रूरत होगी जो संवेदना, त्याग और प्रेम को ज्ञान का अन्तरंग गुण मानता हो. ऐसे दर्शन के सन्दर्भ में अर्थ, राज और ज्ञान के मर्म की और उनकी व्यवस्थाओं की समझ बनानी होगी तभी 'स्वराज' के दर्शन की संभावना बनेगी. 'वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड पराई जाने रे' या 'पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ...' जैसी दर्शन की बातों में हमारी स्वदेशी दर्शन परंपरा का एक मज़बूत खम्भा रहा है. आधुनिक ज्ञान की दुनिया नैतिकता के प्रति निरपेक्ष भाव रखती है और 'फिलासफी' इस निरपेक्षता का आग्रह रखती है. विश्वविद्यालय इस भाव और आग्रह को अंगीकार करते हैं. असल में बात यह है कि साइंस (आधुनिक विज्ञान को हम इसी नाम से जानते हैं) खुद को दर्शन, मूल्य, संस्कृति आदि से स्वतंत्र बताता है तथा मानवीय संवेदना के प्रति निरपेक्ष भाव रखने का अहम् पालता है. इसकी आधारभूत तार्किक संरचना तो 'सत्य' तक से कोई रिश्ता न रखने का दावा करती है. इसी साइंस और तर्क पद्धति में विश्वविद्यालयीय विद्या का आधार है. साइंस व प्रौद्योगिकी से लेकर समाजशास्त्र तथा साहित्य और कला समीक्षा सभी का आधार साइंस की वैचारिक चौखट (paradigm) और तर्क की पद्धति में हैं. इसे ही साइंटिफिक टेम्पर के नाम से जाना जाता है जिसे किसी भी विषय को समझने का मानसिक रुझान बताया जाता है. दर्शन विभागों में प्रचलित दर्शन (फिलासफी) इसी वास्तविकता के सामने घुटने टेकती है. क्योंकि फिलासफी में मानवीय संवेदना के लिए कोई स्थान नहीं है. इसीलिए विश्वविद्यालय गाँधी या कबीर को दर्शन विभाग में नहीं पढाते. पहले तो विश्वविद्यालय में इनके लिए कोई स्थान ही नहीं था. लम्बी जद्दोज़हद के बाद थोड़ी सी जगह मिली तो वह भी राजनीतिशास्त्र विभाग में या फिर हिंदी विभाग में. स्वराज और स्वदेशी दर्शन के दृष्टिकोण से हमें इस अवस्था पर गंभीर चिंतन करना होगा.

स्वदेशी दर्शन और स्वराज

स्वदेशी दर्शन कोई दी हुई वस्तु नहीं होती. यह दर्शन ही है तथापि ऐसा दर्शन जो काल, स्थान और लोगों की बुनियादी सोच को सामान्यीकृत रूप में उजागर करता है, सत्य का अनावरण करता है, उसे भाषा देता है और सामान्य जीवन को दिशा देता है.

आजकल यह बात जोर-शोर से कही जा रही है कि आज तकनीकी का और विशेषज्ञता का दौर है. ऐसा कहने वाले व्यापक मानव हित तथा दर्शन इत्यादि पर चर्चा को गैरज़रूरी समझते हैं. सार्वजनिक बहस सिमट-सी गई है. संसदीय लोकतंत्र और वर्तमान मीडिया भी

इसके लिए बड़े पैमाने पर ज़िम्मेदार हैं. महानगरों में रहने वाले तथा उच्च शिक्षा से लैस लोग ही बहस में शामिल हैं. नतीजा यह है कि आम लोग इस बहस के बाहर हो गए हैं. लेकिन अगर गहराई से सोचें तो नज़र आएगा कि सभी कार्यों में कोई न कोई दर्शन निहित होता है और मानव जीवन पर होने वाले दूरगामी नतीजे भी निहित होते हैं. व्यापक बहस और दर्शन से किनारा कसना आत्मघाती है. प्रकृति के विनाश और मनुष्य और मनुष्य के बीच भयानक अंतर ये सब ऐसे ही नतीजे हैं. दूसरे महायुद्ध के बाद, यानि 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में, दुनिया की पुनर्रचना में दर्शन को उचित स्थान नहीं दिया गया, न पश्चिम में और न नवोदित राष्ट्रों में. यह एक बड़ा कारण है कि आज दुनिया गरीबी, गैर-बराबरी, भयानक युद्धों और जलवायु संकट से घिरी हुई है.

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से संघर्ष के दौरान 20 वीं सदी के पूर्वार्ध में वैश्विक दक्षिण के अनेक देशों में दर्शन पर व्यापक चर्चाएं हुईं हैं. इनमें से बहुत सी अपनी स्वदेशी परम्पराओं की समकालीन पुनर्रचना के रूप में सामने आईं. 1939 से 1945 के बीच यूरोप से शुरू हुए महायुद्ध के बाद तमाम उपनिवेश स्वतंत्र हुए तथा साम्राज्यवाद को पीछे हटना पड़ा और अनेक देशों में आज़ाद सरकारें बनी. किन्तु इन देशों में **पश्चिम जैसी राज्य प्रणाली तथा विश्वविद्यालयों में पश्चिमी सोच के दबदबे के चलते स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं का स्थान गौण हो गया. इससे समाज की प्रमुख धारा और सामान्य लोगों के बीच का दार्शनिक संवाद टूटता चला गया.** यह एक भीषण परिस्थिति है जिसमें समाज के उत्थान और पुनर्रचना के लोकप्रिय मूल्यों का निर्माण रुक जाता है और समाज एक अवनत अवस्था में किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है. ऐसा नहीं है कि इस दौर में हुई वार्ताओं का स्वदेशी के विचार के साथ कुछ लेना-देना नहीं है. जनआंदोलनों के अंतर्गत तथा लोकहित के मुद्दों पर संघर्षों के सन्दर्भ में बुनियादी सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक चर्चाएं हुईं, किन्तु ये चर्चाएं स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं से न जुड़ सकीं. जिसका बड़ा कारण यह था कि इन चर्चाओं का सन्दर्भ स्वराज प्राप्ति के किसी लक्ष्य में नहीं था. ये भी अधिकतर संसदीय लोकतंत्र में प्राप्त अधिकारों और कभी-कभी लोकतंत्र के व्यापक विचार के अंतर्गत होती रहीं. लोकतंत्र के सन्दर्भ में भी बुनियादी विमर्श के लिए जगह होती है लेकिन स्वराज और सर्वथा नए जीवन की कल्पना के दार्शनिक सन्दर्भ नहीं मिलते. **स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं में समकालीन इजाफे और वर्तमान युग में स्वराज की कल्पना का आपस में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है. एक के बिना दूसरे के बारे में न सोचा जा सकता है और न ऐसी कोई सामाजिक पहल ही ली जा सकती है.** इसके लिए हमें हाल के दशकों में हो रहे परिवर्तन के उस पक्ष को समझना होगा जिसपर परिवर्तन के कार्यकर्ताओं ने अभी तक शायद अधिक ध्यान नहीं दिया है.

दुनिया में हो रहे स्वदेशी आन्दोलन और दर्शन

20 वीं सदी के अंतिम दशक के शुरू में दुनियाभर की सरकारों ने मिलकर एक विश्व व्यापार संगठन बनाया और सभी देशों ने निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण की नीतियां

अपनाईं. इन नीतियों के चलते जनता नए ढंग से उत्पीडन और शोषण का शिकार होती चली गई. किसान, आदिवासी, कारीगर, छोटे-छोटे दूकानदार और महिलाएं और सभी तरह के समाज सेवक एक ऐसे बाज़ार में फेक दिए गए जो उन्हें सिर्फ लूटता है. उस वक्त के प्रचलित परिवर्तन के दर्शन इन स्थितियों से मुकाबला करने में असफल रहे. सत्ता और पैसे के सामने आम जनता असहाय होती चली गई. लोगों ने अपने विस्थापन और शोषण के खिलाफ न जाने कितने संघर्ष किये, लेकिन उस समय के परिवर्तन के कार्यकर्त्ता ऐसा कोई दर्शन सामने नहीं ला सके जिससे समाजों के मन में कोई उम्मीद जगती और उनके संघर्षों में कोई व्यापक एकता बन पाती. परंतु 21 वीं सदी के शुरू से वैश्वीकरण के विरोध में तरह-तरह के संघर्ष दुनिया भर में अस्तित्व में आये. कुछ ही वर्षों में कई देशों में वहाँ की संस्कृति और ज़रूरतों के अनुरूप स्वराज के नए दर्शन सामने आये. इन सभी में मनुष्य की **संवेदना** को बुनियादी दर्जा हासिल हुआ और एक तरह से ये ऐसे स्वदेशी दर्शन बने जिन्होंने आज की दुनिया में स्वराज की कल्पना साकार करने के ठोस रास्ते खोले. यहाँ अत्यंत संक्षेप में इनका उल्लेख नीचे किये जा रहा है.

- **दक्षिण अमेरिका में बोलीविया और इक्वाडोर नाम के देशों के आदिवासी बहुल समाजों ने 'धरती माँ' के दर्शन को अपने राष्ट्रों के पुनर्निर्माण का आधार बनाया. 'बुएन विविर'** (अच्छी ज़िन्दगी) के नाम से प्रचलित अपने पारंपरिक दर्शन के आधार पर इन्होंने अपने नए संविधान बनाए हैं और नए ढंग से साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं (1995 से ...). प्रकृति और धरती के अधिकारों की यह बात पंचतत्वों के दर्शन से मिलती-जुलती है.
- **वाया कम्पेसिना नाम से एक किसानों और कृषि मज़दूरों का अंतर्राष्ट्रीय संगठन और आन्दोलन है** (1995 से ...). भारत के किसान आन्दोलन की इसमें अच्छी भागीदारी रही है. इस आन्दोलन ने '**खाद्य संप्रभुता**' का नया विचार दिया है. खाद्य सुरक्षा के नाम पर दुनिया भर की सरकारें खाद्य के क्षेत्र में पूंजीवादी ठेकेदारों के हाथ गरीब लोगों का भोजन सौंप रही हैं. जबकि भोजन कैसे पूरा हो इसकी नीति और कार्य की पूरी ज़िम्मेदारी ग्रामीण समाज के हाथ होनी चाहिए और इसके लिए स्थानीय संसाधनों पर उनका स्वामित्व होना चाहिए. यही खाद्य संप्रभुता का विचार है.
- **यूरोप, अमेरिका और कनाडा के कालेज के विद्यार्थी** शिक्षा के क्षेत्र पर बहुराष्ट्रीय निगमों के कब्ज़े के विरोध में तथा अपने सांस्कृतिक दायरों के घटने के खिलाफ आन्दोलन करते रहे हैं (2005 से 2013). वे ज्ञान को विश्वविद्यालय से मुक्त देखना चाहते हैं. वे मरे हुए बनाम जीवंत ज्ञान की बात करते हैं. **उनका कहना है कि विश्वविद्यालय में 'मरा हुआ ज्ञान' पढाया जाता है और यह कि वे 'जीवंत ज्ञान' के पैरोकार हैं.** स्वायत्तता, स्वशिक्षा तथा स्व-संगठन के इर्द-गिर्द उन्होंने अपनी वैचारिक रचना की है. उन्होंने ज्ञान का पूंजीवाद (cognitive capitalism) का विचार बनाया और कहा कि पहले की कारखानों की लड़ाई अब विश्वविद्यालयों में स्थानांतरित हो गई है.

- **'अरब वसंत'** के नाम से कई अरब देशों में वहाँ की सत्ता के खिलाफ संघर्ष हुए (2010 से 2012) और अन्यथा जकड़न से भरे समाजों में आशा की नई किरणों का संचार हुआ.
- भारत के **किसान आन्दोलन** और **जल-जंगल-ज़मीन के जनांदोलन** किसानों और आदिवासियों के ऐसे आन्दोलन रहे हैं जिनमें इनके अपने ज्ञान का दावा रहा है तथा यह कि किसान और आदिवासी ऐसे स्वतंत्र समाज हैं जो अपनी पहल पर विचार और रचना की क्षमता रखते हैं. भारत-इण्डिया का वर्गीकरण एक बार फिर स्वदेशी और स्वराज की ओर ध्यान आकर्षित करता है(1980 के दशक से ...).
- 2011 का भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन '**स्वराज** ' के विचार को फिर से सार्वजनिक बहस में ले आया है.

इन आंदोलनों को ज्ञान-आंदोलनों तथा स्वराज आंदोलनों दोनों ही के रूप में देखा जा सकता है हालाँकि इनमें से अधिकांश ने प्रत्यक्षतौर पर अपने लिए इस शब्दावली का प्रयोग नहीं किया है. इन आंदोलनों के नेतृत्व ने अपने समाज की क्रियाओं और विरासत से नेतृत्वकारी विचारों का निर्माण किया. यह समकालीन दुनिया में ऐसे ज्ञान के रूप में सामने आता है जिसका आधार स्वदेशी दर्शन में हो, न कि उच्च शिक्षा संस्थानों के मार्फ़त प्रचलित यूरोपीय दर्शन और इतिहास में. यह दार्शनिक रुझान यह दावा भी करता है कि वर्तमान समाजों के आज के ज्ञान और उनकी ज्ञान की विरासत में अपने समाजों का सञ्चालन अपने हाथ लेने का आधार है.

ज्ञान आन्दोलन

स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच की कड़ी ज्ञान-आन्दोलन है. यह तिरस्कृत और उत्पीडित समाजों का अपने ज्ञान के दावे का आन्दोलन है. किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे-छोटे दुकानदार और महिलाएं, जो अधिकतर कालेज नहीं गए हैं, अपने ज्ञान के बल पर अपनी जीविका अर्जित करते हैं, अपना समाज चलाते हैं और बृहत् समाज को आवश्यक सेवाएं देते हैं. इनके ज्ञान को **लोकविद्या** के नाम से जाना जाता है तथा इन सबको मिलकर हम **लोकविद्या-समाज** कह सकते हैं. इन्हीं के ज्ञान-आन्दोलन को स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच की कड़ी बनना है. उसे हम **लोकविद्या जन आन्दोलन** कह सकते हैं क्योंकि यह लोकविद्या-समाजों का अपने ज्ञान के दावे का आन्दोलन होगा.

लोकविद्या का विचार

स्वदेशी दार्शनिक परम्पराओं का अन्तरंग रिश्ता ज्ञान के लोक विस्तार के साथ होता है. ज्ञान के इस लोक विस्तार को **लोकविद्या** कहते हैं. यह ज्ञान का वह रूप है जिसमें जानकारियां, मूल्य और तर्क के रूप एक दूसरे से अलग नहीं होते तथा तकनीकी निखार व विशेषज्ञता की भी कोई कमी नहीं होती. यही ज्ञान का वह रूप है जो मनुष्य को प्रकृति के साथ तारतम्य में रहने और संवेदना को मनुष्य के व्यवहार में केन्द्रीय स्थान देने की समझ

व आधार देता है. जिस तरह फिलासफी में स्वदेशी दर्शन परम्पराओं को स्थान नहीं मिलता उसी तरह विश्वविद्यालयीय ज्ञान में लोकविद्या को स्थान नहीं मिलता. समाज का एक बहुत बड़ा बहुमत किसान, कारीगर, आदिवासी, छोटे-छोटे दुकानदार, महिलाएं, समाज को तरह-तरह की तकनीकी सेवाएं मुहय्या कराने वाले, लोक कलाकार और बस्तियों तथा गाँवों में सम्मान प्राप्त दार्शनिक व दार्शनिक रुझान के लोग, ये सभी अपने ही ज्ञान के बल पर अपनी ज़िन्दगी चलाते हैं और अपनी व समाज की तमाम आवश्यकताएं पूरी करते हैं. इन्हीं के ज्ञान को **लोकविद्या** कहते हैं. और ज़रा सा विचार यह दिखाता है कि समाज के अनुभवों, उसकी ज़रूरतों और इन लोगों की अपनी तर्कबुद्धि के आधार पर लोकविद्या सदैव गतिशील होती है. **लोकविद्या दर्शन की यह मान्यता है कि सभी ज्ञान लोकविद्या से शुरू होता है और वापस लोकविद्या में आता है. जो ज्ञान लोकविद्या में वापस नहीं आता वह मनुष्य और प्रकृति के प्रति निरपेक्ष हो जाता है और इन दोनों के प्रति आक्रामक होने का रास्ता खुल जाता है.** लोकविद्या ज्ञान का वह रूप है जिसमें स्वराज की पुर्रचना का आधार होता है. जब जब समाज की व्यवस्थाएं, उसका सञ्चालन और नियमन स्वराज से दूर चला जाता है तब तब लोकविद्या के सहारे ज्ञान आन्दोलन उभरते हैं और व्यवस्थाओं को वापस स्वराज की धुरी पर ले आते हैं. निम्नलिखित बिंदु लोकविद्या के बारे में सोचने में सहायक होंगे.

- लोकविद्या समाज में बसती है. इसे किसी किताब, जाती, धर्म, ग्रंथालय, विश्वविद्यालय अथवा कम्पूटर में बाँधा नहीं जा सकता. यह लोगों के पास जिंदा रहती है और वहीँ संवर्धित होती है.
- लोकविद्या नित-नवीन होती है. अपनी और समज की ज़रूरतों के चलते लोग अपने अनुभव के आधार पर, अपनी तर्क बुद्धि और प्रयोगों के जरिये लोकविद्या में सतत इजाफा करते रहते हैं.
- लोगों की शक्ति का आधार लोकविद्या में होता है. लोकविद्या के बल पर वे केवल जीविका ही नहीं चलाते, बल्कि प्रकृति से और मनुष्यों के बीच सम्बन्ध बनाते हैं, सही-गलत की पहचान करते हैं, अन्याय का मुकाबला करते हैं और मूल्यों व तर्कों की बुनावट से अपनी विश्वदृष्टि बनाते हैं.
- लोकविद्या श्रम और बुद्धि को अलग-अलग नहीं करती. लोकविद्या में कोई कार्य केवल श्रम का नहीं माना जाता, बल्कि श्रम व ज्ञान के मेल में ही होता देखा जाता है. दूसरे शब्दों में लोकविद्या मेहनत का काम करने वाले किसी भी व्यक्ति को मात्र मज़दूर नहीं मानती, बल्कि ज्ञानी व्यक्ति मानती है.
- लोकविद्या ज्ञान का वह प्रकार है जो संवेदना से सराबोर होता है. उसकी गति के हर कदम में संवेदना की उपस्थिति देखी जा सकती है. यानि लोकविद्या के इस्तेमाल और संवर्धन की हर घटना में नैतिक कसौटियां दिखाई देती हैं.
- लोगों के सोचने का तरीका, समाज के मूल्य, तर्क की विधाएं, सामाजिक संगठन का मर्म, संगठन का विचार, आपस में और प्रकृति के साथ उनके रिश्तें तथा उनकी

जानकारियाँ, हुनर व दर्शन सभी कुछ मिलकर ज्ञान की जो दुनिया बनाते हैं वह लोकविद्या का विद्यालोक है.

- समाज में फैली सामाजिक और आर्थिक गैरबराबरी को दूर करने की एक शर्त यह है कि लोकविद्या को विश्वविद्यालय की विद्या के बराबर मान और मूल्य मिले.
- लोकविद्या जन आन्दोलन लोकविद्या-समाज का ज्ञान आन्दोलन है. यह लोकविद्या का ज्ञान-दावा पेश करता है तथा बृहत् समाज में लोकविद्या और लोकविद्या-समाज के लिए बराबरी का दर्जा हासिल करने का लक्ष्य रखता है.

लोकविद्या जन आन्दोलन

लोकविद्या के नाम से विचार और कार्य की शुरुआत 1995 से हुई. पहला बड़ा सार्वजनिक कार्य '**लोकविद्या महाधिवेशन'** नवम्बर 1998 में वाराणसी में हुआ. **लोकविद्या की प्रतिष्ठा** के उद्देश्य से आयोजित इस महाधिवेशन में लोकविद्या और समाज से सम्बंधित तमाम विषयों पर वार्ता के लिए देशभर से लगभग 1500 प्रतिभागियों ने 5 दिनों तक अपनी हिस्सेदारी की. किसानों, कारीगरों, और महिलाओं के सम्मेलनों के मार्फ़त उनके अपने ज्ञान के दावे पेश किया गए. इसके बाद के वर्षों में '**लोकविद्या संवाद'** के प्रकाशन के इर्द-गिर्द लोकविद्या प्रतिष्ठा का अभियान चलता रहा. जनवरी 2004 में मुंबई विश्व सामाजिक मंच में लोकविद्या समूह ने '**समाज में ज्ञान पर संवाद'** कार्यशाला का आयोजन किया. इस अवसर पर '**बौद्धिक सत्याग्रह**' के नाम से पोस्टर व बुलेटिन प्रकाशित किये गए. इसके बाद से ही देश के विभिन्न शहरों में और उच्च शिक्षा संस्थानों में लोकविद्या के दावे के इर्द-गिर्द बैठक-वार्ताएं की गईं. फिर 2005 में वाराणसी में **विद्या आश्रम** बनाया गया. विद्या आश्रम को बनाने और शुरू से लोकविद्या को आगे बढ़ाने का सन्दर्भ किसान आन्दोलन में रहा जहाँ सतत एक समकालीन स्वदेशी दर्शन की ज़रूरत महसूस की जाती रही. जिस समूह ने यह कार्य किया वह 1980 से किसान आन्दोलन में सक्रिय रहा तथा कारीगर, आदिवासी, पटरी के दुकानदार व महिलाओं के संघर्षों व संगठनों से जुडा रहा.

विद्या आश्रम की स्थापना इस पहचान के साथ हुई कि सूचना तंत्र व इन्टरनेट के चलते ज्ञान की दुनिया में एक भूचाल सा आया है. इस भूचाल ने संगठित ज्ञान के राजा बन बैठे 'साइंस' को उसकी राजगद्दी से गिरा दिया है. यह पहचान की गई कि किसी भी अन्य ज्ञान को 'ज्ञान' का दर्जा पाने के लिए अब साइंस की कसौटियों पर कसा जाना ज़रूरी नहीं रह गया, जैसा की 1990 के पहले के औद्योगिक युग में हुआ करता था. इस स्थिति में लोकविद्या समूह ने यह समझ बनायी कि लोकविद्या को अपना ज्ञान का दावा पेश करने और ज्ञान का वाजिब दर्जा फिर से हासिल करने का ऐतिहासिक मौका पैदा हुआ है. विद्या आश्रम ने शुरू से **समाज में ज्ञान पर संवाद** चलाकर प्रकाशनों के माध्यम से और लोकविद्या-समाज के संघर्षों से जुड़कर लोकविद्या का दावा पेश करना शुरू किया. इसी क्रम में **अगरिया विद्या, नारी विद्या, स्थानीय बाज़ार अभियान, भाईचारा विद्यालय, कारीगर**

समाज, किसान पीठ, ज्ञान मुक्ति मंच, लोकविद्या-पंचायत, लोकविद्या-सत्संग, ज्ञान-पंचायत और बौद्धिक सत्याग्रह जैसी पहलों के मार्फ़त इस पूरे अभियान का लोकविद्या जन आन्दोलन का रूप सामने आया. इसी दौरान विश्व सामाजिक मंच (WSF) और यूरोप के छात्र आन्दोलन से उपजे Edu-factory जैसे अंतर्राष्ट्रीय संवाद मंचों में भागीदारी के मार्फ़त लोकविद्या जनित नई ज्ञान मीमांसा को पेश किया गया.

वाराणसी में सारनाथ स्थित विद्या आश्रम में नवम्बर 2011 में **लोकविद्या जन आन्दोलन** के नाम से एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ. लोकविद्या का इसके बाद 2012 में बिहार में दरभंगा, आन्ध्र प्रदेश में विजयवाडा, मध्य प्रदेश में सिंगरौली तथा इंदौर में लोकविद्या जन आन्दोलन के क्षेत्रीय सम्मलेन हुए. 2012-13 में सेवाग्राम और मुंबई में आन्दोलन के कार्यकर्ताओं की बड़ी-बड़ी बैठके हुईं जिसमें इस ज्ञान आन्दोलन के विभिन्न पक्षों पर विस्तार से चर्चा हुई. फिर मूलताई, इंदौर, नागपुर और वाराणसी में सम्मेलनों के जरिये जन संघर्षों को लोकविद्या ज्ञान के नज़रिए से देखने पर विचार विमर्श हुआ. हैदराबाद और बंगलुरु में तेलुगु और कन्नड़ भाषा में लोकविद्या विचार और उसके ज्ञान के दावे को विस्तार दिया गया. बराबरी के दावे ने अब तक इस मांग का रूप ले लिया था कि लोकविद्या के बल पर जीविका चलाने वाले परिवारों की आय पक्की व नियमित हो तथा यह आय सरकारी कर्मचारी की आय के बराबर हो. इस विषय पर हिंदी, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, उर्दू और बंगला में समग्र तर्क के साथ पुस्तिकाएं प्रकाशित की गईं. इस दौर में **लोकविद्या समन्वय समूह, लोकविद्या मेल-मिलाप, लोकविद्या सत्संग, लोकविद्या ताना-बाना, लोकविद्या कला-ज्ञान-पंचायत, लोकविद्या भाईचारा विद्यालय, लोकविद्या प्रपंचम, लोकविद्या साधिकार संघटना, लोकविद्या आश्रम, लोकविद्या विकी, लोकविद्या स्वराज, लोकविद्या बाज़ार और लोकविद्या वेदिके** के नाम से अलग-अलग स्थानों पर विचार और कार्यक्रम बनते गए.

स्वराज दर्शन और पुनर्रचना की दृष्टि से **बौद्धिक सत्याग्रह** और **ज्ञान-पंचायत** लोकविद्या जन आन्दोलन की बुनियादी अवधारणाओं के रूप में उभरे हैं. इन पर संक्षेप में नीचे चर्चा की गई है.

बौद्धिक सत्याग्रह : बौद्धिक सत्याग्रह ज्ञान की दुनिया की पुनर्रचना का सत्याग्रह है. यह एक ऐसी ज्ञान की दुनिया बनाने का सत्याग्रह है जिसमें सत्य, संवेदना, त्याग और प्रेम जैसे मूल्य अंतर्निहित हों. यह स्वदेशी दर्शन परम्परा की पुनर्रचना की भूमि तैयार करता है. जीवन के हर पक्ष में ज्ञान की भूमिका होती है तथा समाज की व्यवस्थाएं एवं उनके सञ्चालन व नियमन के तरीके सभी ज्ञान आधारित होते हैं. इस अर्थ में बौद्धिक सत्याग्रह स्वराज की पुनर्रचना व पुनर्स्थापना का विस्तृत ज्ञान आधार तैयार करने का मार्ग प्रशस्त करता है. नीचे के बिन्दु इस दृष्टि से अपने विचार और व्यवहार तय करने में मदद कर सकते हैं.

- **लोकविद्या की सामाजिक प्रतिष्ठा के अभियान चलाना या उनमें शामिल होना.** धीरे-धीरे सरकारी नीतियां हर सार्वजनिक पद अथवा कार्य की ज़िम्मेदारी के लिए शैक्षणिक डिग्रियों को अनिवार्य शर्त बना रही है. नौकरियों में तो यह पहले से है. अब पंचायतों और विधायिकाओं में प्रवेश के लिए भी ऐसा करने के प्रस्ताव आ रहे हैं. कहीं कहीं यह हो भी गया है. यह लोकविद्या का खुला तिरस्कार है. लोकविद्या के आधार पर बनी वस्तुओं को बाज़ार में कम मूल्य मिलना और शासन द्वारा इसे जायज़ मानना यह भी लोकविद्या का खुला तिरस्कार है. वैसे तो आधुनिक शिक्षा के प्रसार के साथ लोकविद्या का तिरस्कार यह रोजमर्रे की बात हो गई है. ये तिरस्कार जहाँ भी दिखाई दे उसका विरोध- संगठनात्मक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और दर्शन के स्तर पर विरोध- बौद्धिक सत्याग्रह है.
- **ज्ञान की दुनिया में ऊँच-नीच का विरोध करना तथा लोकविद्या और संगठित ज्ञान के बीच बराबरी का आग्रह रखना.** चूँकि आज की दुनिया अर्थ प्रधान है आर्थिक क्षेत्र में बराबरी के बगैर लोकविद्या और संगठित ज्ञान के बीच बराबरी हासिल नहीं हो सकती. शासन से यह आग्रह करना चाहिए कि लोकाविद्या से जीवनयापन करने वाले सभी परिवारों की आय वैसी ही हो जैसी एक सरकारी कर्मचारी की होती है. इस बराबरी का आग्रह बौद्धिक सत्याग्रह का एक महत्वपूर्ण अंग है.
- **लोकविद्या के बल पर अपना जीवन चलाने और समाजसेवा करने का अधिकार मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है.** इसके पक्ष में खड़ा होना बौध्दिक सत्याग्रह का एक रूप है. सरकारी नीतियां और देशी और विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ लगातार लोगों को उनके लोकविद्या आधारित धंधों से बेदखल करती हैं. इसे ही विस्थापन के नाम से जाना जाता है. विस्थापन के विरोध को लोकविद्या की भाषा में अभिव्यक्त करने से उसका बौद्धिक सत्याग्रह का रूप सामने आता है.
- **स्थानीय बाज़ार यह प्रमुख रूप से लोकविद्या उत्पादों का बाज़ार होना चाहिए.** बड़ी कंपनियों की बनाई हुई और दूर से आने वाली वस्तुओं की तुलना में स्थानीय उत्पादन खरीदने के आग्रह से लोकविद्या की गतिशीलता को बल मिलता है. यह बौद्धिक सत्याग्रह का एक रूप है.
- **कला का क्षेत्र बौद्धिक सत्याग्रह की एक उर्वर दुनिया है.** कला वह क्षेत्र है जहाँ संवेदनायुक्त रचना को सम्मान है तथा जहाँ सोचने का तरीका साइंस तथा उसके मूल्यों और मानकों से दबा नहीं होता. विश्वविद्यालय की विद्या में उसकी कसौटी नहीं होती. लोकविद्या को सम्मान की दृष्टि से देखने से कला नए-नए आयामों में विस्तार पायेगी तथा स्वदेशी दर्शन और स्वराज के बीच नई-नई कड़ियाँ बनाएगी.

ऐसे और इनसे मेल खाने वाले विचारों के अंतर्गत अपने व्यवहार का निर्धारण करना.

ज्ञान-पंचायत:

स्वराज का दर्शन ज़मीन पर उतरे इसके लिए ज्ञान की गतिविधि की ऐसी विधाएं, स्थान, संगठनात्मक रूप आदि चाहिए जहाँ ज्ञान के सभी किस्म की धाराओं और रूपों को बराबरी का सम्मान मिलता है. ज्ञान पंचायत का विचार एक ऐसा ही विचार है. यह ज्ञान की दुनिया पर साइंस और विश्वविद्यालय के एकाधिकार को ख़त्म करने का एक मार्ग है. साइंस ने अपने को ज्ञान की दुनिया का सर्वश्रेष्ठ सदस्य माना है तथा अधिकतर तो और किस्म के ज्ञान को, लोकविद्या को, ज्ञान मानने से ही इंकार कर दिया है. विश्वविद्यालय की कल्पना '**अज्ञान के सागर में ज्ञान के एक टापू**' के रूप में की जाती है तथा उसे समाज में ज्ञान की गतिविधि का एकमात्र स्थान माना जाता है. (यहाँ विश्वविद्यालय का अभिप्राय उच्च शिक्षा और अनुसन्धान के सभी अभिकरणों और उपक्रमों से है). यह स्थिति विचार और व्यवहार को लगातार स्वदेशी और स्वराज से दूर भटकाती है. ये परिस्थितियां लोकविद्या-समाज के ज्ञान आन्दोलन में ज्ञान-पंचायत जैसे स्थानों और प्रक्रियाओं को बनाने के लिए प्रेरित करती हैं. इससे न केवल साइंस और विश्वविद्यालय की इजारेदारी टूटेगी बल्कि ज्ञान की प्रभावी प्रक्रियाओं में सभी की भागीदारी सुनिश्चित होगी और पहल के रास्ते खुलेंगे. ज्ञान पंचायत का आधार ही इस विचार में है कि वहां उपस्थित सभी व्यक्तियों के ज्ञान को बराबर माना जायेगा तथा सबके विचारों को बराबर का सम्मान दिया जायेगा. प्रोफ़ेसर और किसान, मंत्री और मजदूर, उद्योगपति और कारीगर, स्त्री और पुरुष सभी के दृष्टिकोण और विचार बराबर की हैसियत के माने जायेंगे.

पहली ज्ञान-पंचायत 2009 में विद्या आश्रम सारनाथ में हुई. लगभग 25-30 उपस्थित व्यक्तियों ने सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार, किसान, कारीगर, स्त्रियाँ, पतारिठेले वाले और उच्च शिक्षित सभी थे. विषय था - **'विश्वविद्यालय की दीवारें टूटनी चाहिए'**. सबने विश्वविद्यालय की दीवार की अपनी समझ पेश की. सबने उसको इसी अर्थ में लिया कि किस तरह विश्वविद्यालय और आम जनता के बीच दूरी है. किसी ने इस दूरी को आर्थिक बताया, तो किसी ने मनोवैज्ञानिक, और किसी ने सामाजिक. इसे सांस्कृतिक दूरी के रूप में भी देखा गया और ईंटे-गारे की चाहरदीवारी के रूप में भी. दूसरी ज्ञान पंचायत विद्या आश्रम पर ही **'बिजली ज्ञान-पंचायत'** के नाम से हुई. इसमें भी तरह-तरह के भागीदार थे. किसानों और कारीगरों की संख्या ज्यादा थी. मुख्य चर्चा बिजली वितरण के अधूरेपन और अनियमितताओं को लेकर हुई. फिर एक **बिजली ज्ञान-पंचायत सिंगरौली** में हुई जो देश का तापीय विद्युत् उत्पादन का सबसे बड़ा केंद्र है. इसमें कामगारों और तकनीशियनों ने यह आत्म विश्वास दिखाया कि उच्च शिक्षित इंजीनियर के न होने पर भी सभी संयंत्र बनाये और चलाये जा सकते हैं. यह भी विचार स्पष्ट सामने आया कि उत्पादन बढ़ने से सभी को ज्यादा बिजली मिलेगी ऐसा कुछ नहीं है. वितरण की नीति पहले तय होनी चाहिये उत्पादन उसका अनुसरण करेगा. दरभंगा में '**देश के हर परिवार को पक्की और नियमित आय**' हो के विषय पर ज्ञान-पंचायत हुई. हैदराबाद, इंदौर, नागपुर, मूलताई, और औरंगाबाद(महाराष्ट्र) में भी

ज्ञान पंचायतें हुईं जिनके विषय **'सबकी पक्की आय', 'लोकविद्या और विश्वविद्यालय के बीच सम्बन्ध', 'कला की दुनिया से पहल' और 'कला की ज्ञान दृष्टि'** रहे. वाराणसी में **किसान-कारीगर ज्ञान-पंचायत** का सालाना आयोजन भी होता है. इस सबके मार्फ़त ज्ञान आन्दोलन में ज्ञान-पंचायत की निश्चित भूमिका बनी है. आम लोगों के बीच ज्ञान पंचायतें एक तरह की जन-सुनवाई का रूप लेतीं हैं, ज्ञान पर जन-सुनवाई का.

[*यह प्रथम प्रारूप है. कुछ सुधार और विस्तार की मांग करता प्रतीत होता है. फ़िलहाल इसके प्रकाशन पर विचार न किया जाये.*]